

बोंडाडा गजपति राव

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य

[ए. के. सरकार, एम. हिदायतुल्ला और जे. आर. मुधोलकर, जे. जे.]

आपराधिक मुकदमा-अपीलार्थी को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई

अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु-उत्तराधिकारी क्या अपील पर मुकदमा चला सकते हैं-दंड प्रक्रिया संहिता, 1898, (1898 का अधिनियम 5), धारा 431 , 435 , 439 - भारत का संविधान, अनुच्छेद 136 .

अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया था।

उच्च न्यायालय द्वारा अपनी पत्नी की हत्या के अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें इस अदालत द्वारा अपील करने के लिए विशेष अनुमति दी गई थी। इस अपील की सुनवाई के दौरान अपीलार्थी की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद उनके बेटों और बेटी ने अपील के मुकदमें को चलाने की अनुमति के लिए इस अदालत में आवेदन किया।

यह अपीलार्थी के कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा अनुरोध किया गया था कि यद्यपि कारावास की उस सजा को अब निष्पादित नहीं किया जा सकता था, फिर भी यह मृतक की संपत्ति को प्रभावित करता था और इसलिए कानूनी प्रतिनिधि अपील में रुचि रखते थे और उन्हें इसे जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। अपीलार्थी, जो आंध्र प्रदेश सरकार में उच्च पद पर था, को उसके खिलाफ आरोप की जांच के दौरान निलंबित कर दिया गया था और उसे दोषी ठहराए जाने पर कुछ सेवा नियमों के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। इस दौरान अपीलार्थी को केवल एक छोटा भत्ता दिया गया था। इन तथ्यों पर यह दलील दी गई थी कि यदि दोषसिद्धि को दरकिनार कर दिया जाता है, तो मृतक की संपत्ति सरकार से पूरा वेतन प्राप्त करने की हकदार होगी।

निर्धारित (सरकार, जे.): कि इस वर्तमान केस पर ना ही धारा 431 पर आरैर ना ही केस जो बताया गया है लागू होता है। यह कोई अपील नहीं है जो कि धारा 431 की तरह मानी जावे आरैर ना ही यह रिविजनल प्रार्थनापत्र है जो कि प्रवण कुमार मित्रा के केस में विचार के लिए आया था। यह अंग्रेजी मुकदमें के अनुसार एक प्रेरक मूल्य रखता है।

प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1959] सप. 1 एस. सी. आर. 63 और हॉजसन बनाम लेकमैन, [1943] एल. आर. के. बी. 15, में प्रतिस्थापित।

(ii) वह सिद्धांत जिसके आधार पर किसी अभियुक्त की मृत्यु के बाद कार्यवाही की सुनवाई जारी रखी जा सकती है, एेसा प्रतीत होता है कि किसी अभियुक्त की मृत्यु के बाद भी इसे जारी रखा जायेगा। यदि सजा का असर उसके कानूनी प्रतिनिधि के हाथों में जाने वाली सम्पत्ति पर पड़ेगा तो यदि सजा उस संपत्ति को प्रभावित करती है , तो कानूनी प्रतिनिधियों को कार्यवाही में रुचि रखने वाला कहा जा सकता है और उन्हें इसे जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 136 के तहत यह सिद्धांत अपील आरैर पुनरीक्षण पर लागू होता है, और याचिकाआेें में भी लागू होता है।

जुर्माने की सजा से निःसंदेह संपत्ति को प्रभावित करती है। हालाँकि वर्तमान मामले में सजा जुर्माने की नहीं, बल्कि कारावास की थी, जो अभियुक्त की मृत्यु पर निष्फल हो गई है। वर्तमान मामले में इस मामले में दी गई सजा को रद्द कर दिये जाने के प्रभाव से कानूनी प्रतिनिधि को सीधे तौर पर हकदार नहीं बनाएगा, इसके लिए उन्हें सरकार से आवश्यक आवेदन प्राप्त करने होंगे।

निर्धारित (हिदायतुल्ला, जे.): (i) यह एक कारावास की सजा के विरुद्ध अपील थी। आरैर इस प्रकार की अपील आम तौर पर अपीलकर्ता की मृत्यु पर समाप्त हो जायेगी, क्योंकि एक अापराधिक अभियोजन मुख्य रूप से एक अपराधी की सजा से संबंधित है ना कि अभियोजन मामले की

सच्चाई और झुठ के बारे में एक अमूर्त मुद्दे की सुनवाई से दोषसिद्धि के बाद अपीलों पर भी यही सिद्धान्त लागू होना चाहिए। सिवाए इसके कि जहां तक पहले से दिया गया फैसला कानूनी प्रतिनिधि के पास आने वाली सम्पत्ति को प्रभावित करता है। जहां तक व्यक्तिगत सजा (जुर्माने के अलावा) का सवाल है वह अपराधी की मृत्यु के बाद खत्म हो जाती है और उस सजा को रद्द कराने की अपील निरर्थक हो जाती है और खत्म हो जाती है।

प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1959] सुप्रीम कोर्ट केस 1 एस. सी. आर. 63, प्रीतम सिंह बनाम राज्य, [1950] एस. सी. आर. 453,

हॉजसन बनाम लेकमैन, [1943] L.R.K.B. 15, बाघिस बनाम राॅवेस [1955] 1 क्यू. बी. डी. 573, संदर्भित।

(ii) प्रणब कुमार मित्रा बनाम द. पश्चिम बंगाल राज्य में निर्धारित सिद्धांत और दूसरा प्रीतम सिंह बनाम राज्य में निर्धारित सिद्धान्त का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है, क्योंकि विशेष अनुमति द्वारा की गई अपील और संशोधन के बीच कोई समानता नहीं।

वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है, क्योंकि विशेष अनुमति द्वारा अपील और संशोधन के बीच कोई समानता नहीं है। प्रतिनिधियों को अपराधी की मृत्यु के बाद जुर्माने का दायित्व पूरा करना पड़ता है या उन

संपत्तियों की रक्षा करने की आवश्यकता होती है जिनके बारे में उनका दावा है कि उन्हें उन तक पहुंचना चाहिए। वर्तमान मामले में फैसले से याचिकाकर्ताओं का कोई भी दावा सीधे तौर पर खतरे में नहीं पड़ता है। उनका दावा सरकार की प्रशासनिक कार्यवाही पर निर्भर है जो आपराधिक मुकदमों के परिणाम पर आगे नहीं बढ़ सकता है। यह अपील केवल दोषसिद्धि की सत्यता या अन्यथा से संबंधित थी, ना कि अपील के परिणाम के आधार पर किसी मौद्रिक दावे से। ऐसी स्थिति में सामान्य नियम यह है कि किसी व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही उसके निधन पर समाप्त हो जाती है, इस अदालत में विशेष अपीलों पर भी लागू होनी चाहिए, भले ही आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधान सीधे लागू ना हो।

(प्रति. मुधोलकर,जे.): ने निर्धारित किया (1) प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य में इस अदालत के द्वारा दिये गये फैसले का विशेष अनुमति द्वारा इस अदालत में लाई गई अपील पर कोई असर नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय और कुछ अन्य न्यायालयों को संहिता की धारा 435 द्वारा और इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त शक्ति विवेकाधीन है। संहिता की धारा 439 के तहत उच्च न्यायालय किसी भी अपीलीय अदालत को धारा 423, 426, 427 और 428 द्वारा किसी अदालत को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का भी प्रयोग कर सकता है जिसमें 338 और सजा बढ़ाने की भी शक्ति

है, संहिता की धारा 435 के तहत, उच्च न्यायालय स्वतः संज्ञान लेकर किसी भी निचली अदालत का रिकॉर्ड मांग सकता है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस अदालत द्वारा इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इसलिए पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय की शक्ति और संविधान के अनुच्छेद 136 में इस न्यायालय की शक्ति के बीच एक बुनियादी अंतर है।

प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1959] सप. 1 एस. सी. आर. 63, विशिष्ट।

(ii) आपराधिक मामले में मुद्दा अभियुक्त व्यक्ति और राज्य दोनों पक्षों के बीच व्यक्तिगत होता है और अपील का अधिकार भी अपीलार्थी के लिए व्यक्तिगत होता है। इस न्यायालय में विशेष अनुमति से लाई गई आपराधिक अपील में मृतक अपीलार्थी के कानूनी प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन की अनुमति देने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है।

कानून की नीति को समझने के लिए संहिता की धारा 431 को ध्यान में रखना होगा। संहिता की धारा 431 के तहत नीति यह है कि अध्याय XXXI के तहत प्रत्येक आपराधिक अपील जुर्माने की सजा की अपील को छोड़कर समाप्त हो जाएगी। ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो अपील को जारी रखने का निर्देश देता हो, जहां सजा कारावास की है।

वर्तमान मामले में कानूनी प्रतिनिधियों का हित इस अर्थ में प्रत्यक्ष हित नहीं है कि यह इस न्यायालय के निर्णय से उत्पन्न नहीं हो सकता है, भले ही वह अपीलार्थी के पक्ष में हो। एकमात्र हित जो आवेदकों के पास है वह एक आकस्मिक है और वह ऐसा नहीं है जो सीधे इस न्यायालय के अंतिम निर्णय से निकल सकता है।

हॉजसन बनाम लेकमैन, (1943) L.R.K.B. 15, रेजिना बनाम रोव, (1955) (1) क्यू. बी. डी. 573, हेस्केथ बनाम एथर्टन, लीच बनाम वानस्टेड स्कूल बोर्ड, साइबेरी बनाम कोनोली, कांस्टेनटाइन बनाम इलिंगवर्थ, जोन्स बनाम गैलोफील्ड, रिवर्स बनाम ग्लासे, (सभी शॉर्ट एंड मेलर में किंग्स बेंच के क्राउन साइड में उद्धृत पर अभ्यास करते हैं। पेज 425) संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम मूक, 125 एफ 2 डी 706, द केरल राज्य बनाम नारायणी अम्मा कमला देवी, [1962] 3 एस. सी. आर. 943 और इम्पेरेट्रिक्स बनाम डोंगली अंदाजी, (1879) आई. एल. आर. बोम्बे 564 , संदर्भित और चर्चा की गई।

(iii) विधान-मंडल ने संहिता की धारा 431 में जुर्माने की सजा के खिलाफ अपील के अस्तित्व को सिमित करके केवल एक प्रकार के हित को मान्यता देने का विकल्प चुना है और किसी प्रकार के हित को नहीं। इसकी सीमा निर्धारित की है। यह न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों या विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक प्रकार के हित को पहचानने में

सही कानूनी सिद्धांतों के अनुसार कार्य नहीं करेगा जिसे विधायिका ने मान्यता देने के लिए नहीं चुना है। इन परिस्थितियों में अपील पर मुकदमा चलाने के लिए विशेष अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय: 1961 के आपराधिक अपील संख्या 179। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की 1960 की आपराधिक अपील संख्या 161 के 31 अक्टूबर, 1960 के निर्णय से विशेष अनुमति से अपील।

अपीलार्थी की ओर से के.आर. चौधरी,

ए. एस. आर. चारी, बी. आर. जी. के. आचार और आर. एन. सचथे, उत्तरदाता के लिए।

16 मार्च, 1964। निम्नलिखित निर्णय दिए गए थे।

सरकार जे.- यह अपील अपीलार्थी पर अपनी पत्नी की हत्या के अपराध में दोषी ठहराए जाने पर आजीवन कारावास की सजा के खिलाफ है। यह अपील इस अदालत में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति याचिका के तहत दायर की गई थी, लेकिन अपील के लम्बित रहने के दौरान अपीलार्थी की मृत्यु हो गई। उनके कानूनी प्रतिनिधि अब अपील जारी रखने के लिए अनुमति चाहते हैं।

इस प्रस्ताव के लिए पुनरीक्षण याचिकाएँ और जुर्माने की सजा से कुछ अपीलें मृत्यु पर उनके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा जारी रखा जा सकने के संबंध में प्राधिकृत प्रतीत होती है। कार्यवाही लंबित रहने वाले अभियुक्तों

के बारे में धारा 431 दंड प्रक्रिया संहिता और प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1) ऐसा प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में मृत अपीलार्थी के निष्पादक द्वारा समान सजा की अपील जारी रखने की अनुमति है। हॉजसन बनाम लेकमैन (1) यह सच है कि न तो धारा 431 न ही उल्लिखित मामलों को वर्तमान मामले प्राेप्रियो विगोरे पर लागू होने के लिए कहा जा सकता है, क्योंकि वर्तमान में संहिता के तहत कोई अपील नहीं है जिसे धारा 431 द्वारा निपटाया जाता है। जैसा कि प्रणब कुमार मित्रा के केस में सामने आया था जबकि अंग्रेजी मामले में यह केवल प्रेरक मूल्य का है। फिर भी मुझे लगता है कि अब यह माना जाना चाहिए कि मृतक अपीलकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा जुर्माने की सजा के खिलाफ अपील जारी रखने की अनुमति दी जाती है। मुझे इस तरह की अपीलों को निरस्त करने वाला कोई प्रावधान नहीं मिला। यदि संहिता के तहत उत्पन्न होने पर भी जारी रखा जा सकता है तो कोई कारण नहीं है कि उन्हें संविधान के तहत उत्पन्न होने पर भी जारी नहीं रखा जाना चाहिए। यदि अभियुक्त की मृत्यु के बाद पुनरीक्षण याचिकाओं को जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है तो अपील भी की जानी चाहिए, क्योंकि जारी रखने के उद्देश्य से उनके बीच सैद्धान्तिक रूप से कोई अन्तर नहीं है। यह सच है कि आपराधिक संहिता जो न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियों का निर्माण करती है वह यह प्रावधान करती है कि ऐसी शक्तियों का प्रयोग स्वप्रेरणा से किया जा सकता है, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि प्रणब

कुमार मित्रा का मामला इस आधार पर आधारित था। सभी पुनरीक्षण मामलों को जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए थी और अनुमति केवल जुर्माने के मामलों तक ही सिमित नहीं होने चाहिए थी। दरअसल उस मामले में यह अदालत इस आधार पर आगे बढ़ी कि मामले पर कोई वैधानिक प्रावधान लागू नहीं था। कहा गया कि " किसी वैधानिक प्रावधान के अभाव में भी हमने माना है कि उच्च न्यायालय के पास दोषी व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी मामले को निर्धारित करने की शक्ति है।" यदि उस पर जुर्माने की सजा भी दी गई क्योंकि वह सजा मृतक की सम्पत्ति को उसके कानूनी प्रतिनिधि के हाथों में प्रभावित करती है।" जब मामला अपील या पुनरीक्षण में आगे बढ़ाया जाता है तो जुर्माने की सजा सम्पत्ति को समान रूप से प्रभावित करती है। यदि एक मामले में अभियुक्त की मृत्यु के बाद भी सुनवाई जारी रखना न्यायोचित और उचित है तो दूसरे मामले में भी ऐसा ही होगा।

जिस सिद्धान्त पर किसी अभियुक्त की मृत्यु के बाद कार्यवाही की सुनवाई जारी रखी जा सकती है, वह उसके कानूनी प्रतिनिधियों के हाथों उसकी सम्पत्ति पर सजा का प्रभाव प्रतीत होता है। यदि सजा उस सम्पत्ति को प्रभावित करती है, तो कानूनी प्रतिनिधियों को कार्यवाही में रूचि रखने वाला माना जा सकता है और उन्हें इसे जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है।

जुर्माने की सजा से निःसंदेह संपत्ति पर असर पड़ता है। हालांकि, वर्तमान मामले में सजा जुर्माने की नहीं, बल्कि कारावास की थी जो अभियुक्त की मृत्यु पर निष्फल बन गई है। अब कोई ऐसा नहीं है जिसे कैद किया जा सके, हालांकि, यह कहा गया है कि उस सजा पर अब अमल नहीं किया जा सकता। यह अभी भी मृतक की सम्पत्ति को प्रभावित करता है और इसलिए कानूनी प्रतिनिधि अपील में रुचि रखते हैं और उन्हें इसे जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। मामला इस तरह रखा गया है, अपीलार्थी जो आंध्र प्रदेश सरकार में एक उच्च पद पर था, को उसके खिलाफ आरोप की जांच के दौरान निलंबित कर दिया गया था और दोषी पाए जाने पर उसे कुछ सेवा नियमों के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। इस दौरान अपीलार्थी को केवल मामूली भत्ता दिया गया था यह कहा गया था कि यदि दोषसिद्धि रद्द कर दी जाती है, तो संपत्ति सरकार से पूरा वेतन प्राप्त करने की हकदार होगी।

मुझे ऐसा लगता है कि यह विवाद सटीक नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यदि सजा को रद्द कर दिया जाता है तो कानूनी प्रतिनिधियों को पूरा वेतन प्राप्त करने के लिए उनके प्रयास में सहायता मिल सकती है जिसके लिए मृतक की संपत्ति हकदार होती, लेकिन मामले में दी गई सजा को रद्द करने के प्रभाव से कानूनी प्रतिनिधि सीधे तौर पर वेतन के हकदार नहीं होंगे। इसके लिए उन्हें सरकार से आवश्यक आदेश प्राप्त करने होंगे। हमें

यह नहीं दिखाया गया है कि एेसा आदेश स्वतः ही दोषसिद्धि को रद्द कर देगा, ना ही यह दिखाया गया है कि कानूनी प्रतिनिधि सरकार को इस आधार पर एेसे आदेश पारित करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकते कि अपीलार्थी की मृत्यु के कारण दोषसिद्धि की सत्यता का परीक्षण नहीं किया जा सकता। इन कारणों से मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि मामले के न्याय के लिए आवश्यक है कि मृतक के कानूनी प्रतिनिधियों को अपील जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह जुर्माने की सजा के मामले में लागू सिद्धान्त का विस्तार होगा। यदि इसके आधार पर इस अपील को कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा मृत्यु के बाद भी जारी रखने की अनुमति दी गई। अपीलार्थी का आैर इस तरह के विस्तार के लिए मुझे कोई वारन्ट नहीं मिला। मेरे विचार में इन कारणों से कानूनी प्रतिनिधि अपील जारी रखने के हकदार नहीं है। एेसा होने पर क्योंकि सजा कारावास की थी जो कि किसी को भी अपराधी की मृत्यु के बाद प्रभावित नहीं करेगी। यह नहीं कहा जा सकता कि कोई भी इस अपील में रुचि रखता है। इसलिए एेसे मामले में अपील के साथ आगे बढ़ने का कोई सवाल ही नहीं है।

हिदायतुल्ला, जे.- आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया जाकर आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। इस अदालत द्वारा अपील करने के लिए विशेष अनुमति दी गई थी। इस अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी

की 30 अगस्त 1963 को मृत्यु हो गई। 5 अक्टूबर, 1963 को उनकी मृत्यु के बाद अपील को चलाने के लिए उनके बेटों और बेटियों ने आवेदन किया। वर्तमान समय में हम केवल उनकी याचिका से ही चिंतित हैं।

अपीलार्थी आंध्र प्रदेश सरकार की सेवा में अधीक्षण अभियंता (बिजली) के रूप में कार्य कर रहा था। उनके खिलाफ मामला यह था कि 10 अगस्त, 1959 को रिवाँल्वर से अपनी पत्नी के पीछे से गोली मारकर हत्या कर दी थी। उन्होंने अदालत की रिपोर्ट का समर्थन किया। उन्हें कृष्णा डिवीजन, मसूलीपट्टनम के सत्र न्यायाधीश द्वारा बरी कर दिया गया था, लेकिन राज्य सरकार की अपील पर उन्हें बरी करने के आदेश को दरकिनार कर दिया और ऊपर लिखित के अनुसार दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। अपीलार्थी की मृत्यु के संबंध में निश्चित रूप से हमें आगे विचार करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। यदि कोई हो, जब तक कि हम अपीलार्थी की अपनी मृत्यु के बाद अपील पर मुकदमा चलाने के लिए उत्तराधिकारियों को अनुमति न दें और वो यही है जो कि वर्तमान याचिका कर्ताओं का दावा है। हालाँकि, यह स्वीकार किया जाता है कि इस न्यायालय में कभी भी कोई अनुरूप विवाद नहीं उठाया गया था। हालाँकि इसके पहले एकमात्र अपीलार्थी की मृत्यु पर अपील को निरस्त माना गया था। कोई यह उम्मीद कर सकता है कि इस तरह की अपील से अपीलार्थी की मृत्यु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि यह एक आपराधिक

अभियोजन मुख्य रूप से एक अपराधी की सजा से संबंधित है ना की किसी अभियोजन मामले की सच्चाई या झुठ के अमूर्त मुद्दे की सुनवाई के बारे में। इस बारे में एक कहावत एक्टियो पर्सनो नलिस मोरिटुर कम परसोना का प्रयोग किया जाता है। आपराधिक प्रक्रिया संहिता धारा 431 में यह भी प्रावधान किया गया है कि धारा 411 ए की उपधारा 2 या धारा 417 के तहत की गई सभी अपीलें आर अध्याय XXXI के तहत हर अपील अंततः अपीलार्थी की मृत्यु पर समाप्त हो जाएगी। जब तक की अपील जुर्माने की सजा के खिलाफ अपील ना हो यह धारा वर्तमान उल्लिखित मामलों को कवर नहीं करती, क्योंकि यह अपील धारा 431 या अध्याय XXXI के तहत में उल्लिखित किसी भी धारा के तहत दायर नहीं किया गया था।

यह तर्क दिया गया है कि धारा 431 दंड प्रक्रिया संहिता की तरह के प्रावधान की सहायता के बिना, अपील को जारी माना जाना चाहिए आर यह बताया गया है कि इस कारण से और अतिरिक्त कारण के लिए पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। स्वतः संज्ञान लेते हुए इस न्यायालय ने धारा 439 के तहत प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य व अन्य आर प्रीतम सिंह बनाम राज्य में कानूनी प्रतिनिधियों को आपराधिक पुनरीक्षण पर मुकदमा चलाने की अनुमति दी है। यह आग्रह किया जाता है कि तर्क की समानता पर इस अपील को

उत्तराधिकारियों द्वारा जारी रखा जा सकता है। यह विचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है कि अपराधी की मृत्यु के बाद प्रत्येक कानूनी कार्यवाही प्रत्यक्ष चोट के अभाव में समाप्त हो जानी चाहिए चाहे उसकी दोषसिद्धि पहले हो या बाद में, लेकिन किसी अन्य को अनुमति देने के लिए हमेशा कुछ स्पष्ट कारण होना चाहिए। अपीलार्थी की मृत्यु के बाद भी व्यक्ति को अपील जारी रखनी होगी चाहे वह दीवानी हो या फौजदारी। अपील कोई वंशानुगत सम्पत्ति नहीं है और यह किसी निस्पादक या उत्तराधिकारी पर निर्भर नहीं करती है। यहां तक कि सिविल संहिता के तहत भी प्रतिस्थापन्न के लिए एक स्पष्ट प्रावधान की आवश्यकता होती है। अपील से पहले मृत व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति की अपील जारी रखी जा सकती है और यह फिर से इस पर निर्भर है कि कार्यवाही का कारण जीवित रहता है या नहीं। वही सिद्धान्त फिर से धारा 431 में आगे है। जब हम जुर्माने की किसी अपील को चलाने के लिए स्वीकार करते हैं लेकिन कारावास की सजा से संबंधित अपीलों को नहीं करते हैं। तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल उन लोगों को अधिकार देता है जिनके हितों को सीधे तौर से खतरे में डाला जाता है। जहां व्यक्तिगत सजा का सवाल है (जुर्माने के अलावा) का संबंध है जो कि मृत्यु से भंग हाे जाता है और उस सजा को रद्द करने की अपील निष्फल हो जाती है।

इस मामले में एकमात्र सवाल यह है कि क्या इस न्यायालय के ऊपर उद्धृत दो मामलों में निर्धारित सिद्धांत विशेष अपीलों को नियंत्रित करते हैं या धारा 431 में अंतर्निहित सिद्धांत को। यह कहा जा सकता है कि पूर्व मामला, वर्तमान मामले पर प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं है, क्योंकि विशेष अनुमति द्वारा अपील और पुनरीक्षण के बीच कोई समानता नहीं है बाद वाला स्वतः संज्ञान हो सकता है लेकिन पहला नहीं। याचिका कर्ताओं का दावा है कि अगर उनके पिता को बरी कर दिया जाता है तो वह अपनी मृत्यु तक की अवधि के लिए अपने वेतन का दावा करने के हकदार होंगे। अगर उन्हें बरी कर दिया जाता, तो वे इसके हकदार होंगे क्योंकि उनकी दोषसिद्धि पर उन्हें सरकारी सेवा से हटा दिया गया और इस प्रकार 40,000/-रूपये की राशि भी शामिल है। याचिका कर्ताओं का कहना है कि अगर अब अपील की अनुमति दी जाती तो वे इस राशि की मांग कर सकेंगे और इस तरह अपील में ब्याज का दावा कर सकेंगे। यह ऐसा मामला नहीं है जहां कानूनी प्रतिनिधि को अपराधी की मृत्यु के बाद जुर्माने के दायित्व को पूरा करना होता है या उन परिसंपत्तियों की रक्षा करने की आवश्यकता होती है जो उन तक पहुँचें। यह एक ऐसा मामला है जहां याचिका कर्ता उच्च न्यायालय के फैसले की जांच करने का दावा करते हैं ताकि वे वेतन पर दावा करने में सक्षम हो सकता है जिसके लिए उनके पिता हकदार होते, अगर वे होते तो उन्हें आपराधिक आरोप से बरी कर दिया जाता। याचिका कर्ताओं का दावा मेरे फैसले से सीधे तौर पर खतरे में

नहीं पड़ा है। उनका दावा सरकार की प्रशासनिक कार्यवाही पर निर्भर है जो आपराधिक अभियोजन के परिणाम पर आगे नहीं बढ़ सकता है। दूसरे शब्दों में, वर्तमान याचिका कर्ता जिस दावे के आधार पर इस अपील में शामिल होना चाहते हैं वह दुरगामी है। अपील केवल शुद्धता के साथ या अन्य प्रकार से उसकी दोषसिद्धि से संबंधित थी ना कि किसी अपील की स्थिति के परिणाम के आधार पर किसी भी मौद्रिक दावे के साथ। ऐसी स्थिति में सामान्य नियम यह है कि आपराधिक कार्यवाही व्यक्ति की मृत्यु पर समाप्त हो जाती है, इस न्यायालय में विशेष अपीलों पर भी लागू होनी चाहिए। भले ही दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान सीधे तौर पर लागू न होते हों।

सुनवाई में वकील ने अंग्रेजी अदालतों और यूनाइटेड स्टेट्स के सर्वोच्च न्यायालय के मामलों का हवाला दिया। संदर्भित इंग्लिश मामलों को क्राउन ऑफिस के शॉर्ट एंड मेलर्स प्रैक्टिस और ग्रिफ़िथ गाइड टू क्राउन प्रैक्टिस में एकत्र किया गया और संयुक्त राज्य अमेरिका के मामलों को एनोटेशन एल/पी (डी) आई. एस. सी. आई.-9 87 वकील संस्करण 1234 और 1 वकील संस्करण ॥ श्रंखला 1879 में संदर्भित किया गया है। अंग्रेजी प्रथा यह प्रतीत होती है कि किसी द्वारा दायर अपील को जारी रखने की अनुमति देने से पहले आक्षेपित निर्णय के कारणों से जीवित रहने के लिए प्रत्यक्ष मौद्रिक दायित्व जुड़ा हुआ होना चाहिए जो कि मृतक व्यक्ति

द्वारा दायर की गई हो। हाँजसन बनाम लेकमैन एवं रेजिना बनाम रोवे अमेरिकी प्रथा भी एेसी ही दिखाई देती हैं। यह अभिनिर्धारित करने का अच्छा कारण है कि एक आपराधिक अभियोजन जिसमें राज्य एक अपराधी को कानून के दायरे में लाने के लिए उत्सुक है-उसे एक अपराध के लिए दंडित करने की दृष्टि से आरोपित व्यक्ति की मृत्यु पर समाप्त हो जाता है। यही सिद्धांत दोषसिद्धि के बाद की अपीलों पर भी लागू होना चाहिए, सिवाय इसके कि जहां तक पहले से दिया गया निर्णय उन परिसंपत्तियों को छूता है जो कानूनी प्रतिनिधियों या निष्पादक के पास आती हैं। इसके अलावा दूरस्थ हितों की कल्पना करना संभव नहीं है क्योंकि यदि कानून को ऐसे दूरस्थ हितों को ध्यान में रखना है तो प्रत्येक अपील को अपीलार्थी की मृत्यु के बाद जारी रखना होगा। मेरे निर्णय में, वर्तमान याचिकाकर्ता किसी भी प्रत्यक्ष हित का दावा नहीं करते हैं और इसलिए, अपील को समाप्त माना जाना चाहिए। मैं सहमत हूँ कि याचिक खारिज की जाती है और अपील को समाप्त कर दिया गया।

मुधोलकर,-जे: — यह अपील एक दिलचस्प और महत्वपूर्ण सवाल उठाती है कि क्या किसी मृत व्यक्ति के कानूनी उत्तराधिकारी जिन्होंने इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका से अपील दायर की है जिन्होंने इसमें अपनी दोषसिद्धि और एक अपराध के लिए सजा को चुनौती दी थी, अपील के लंबित रहने के दौरान अपनी मृत्यु के बाद अपील पर मुकदमा चलाने

के हकदार हैं। आवेदक मृतक के बच्चे हैं जो आंध्र प्रदेश सरकार की सेवा में अधीक्षण अभियंता (बिजली) थे। उन पर अपनी पत्नी की रिवॉल्वर से गोली मारकर हत्या करने के लिए धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था। अपराध की जाँच के दौरान उन्हें 10 अगस्त, 1959 से निलंबित कर दिया गया था और उन्हें कुछ समय के लिए निर्वाह भत्ता दिया गया था। मुकदमे में उनका बचाव यह था कि जब उनकी पत्नी उस चायदानी से रिवॉल्वर उठा रही थी, जिसमें उन्होंने इसे रखा था, इस संदेह में कि वह इससे खुद को गोली मार लेगा, तो वह दुर्घटनावश गोली चल गई और उसकी मौत हो गई। इस बचाव को सत्र न्यायाधीश ने स्वीकार कर लिया और उन्हें बरी कर दिया गया। राज्य की अपील पर आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय ने बरी करने के फैसले को दरकिनार कर दिया और उन्हें धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अपराध का दोषी ठहराया और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई। इसके बाद उन्होंने अपील करने के लिए इस न्यायालय से विशेष अनुमति मांगी और प्राप्त की। अपील के लंबित रहने के दौरान उनकी मृत्यु हो गई। आवेदकों के अनुसार उसे सरकार द्वारा वास्तव में दिये गये निर्वाह भत्ते और देय कुल वेतन के बीच अंतर होने के कारण 40,000/- रुपये देय थे जो उनकी निलंबन की तारीख से मृत्यु तक और यह कि वे उनके कानूनी उत्तराधिकारियों के रूप में दोषसिद्धि और सजा को रद्द करने के

मामले में इस राशि को प्राप्त करने के हकदार होंगे। इस न्यायालय द्वारा मामले को दरकिनार कर दिया गया है।

उनके इस तर्क के समर्थन में कि अपीलार्थी की मृत्यु के कारण अपील समाप्त नहीं हुई है। श्री के. आर. चौधरी इंगित करते हैं कि धारा 431 दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित किया गया है) जो अपीलों के बारे में बात करती है, जो याचिकाएं संहिता के अध्याय XXXI के तहत अपीलों के लिए अपने आवेदन में सीमित है जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 में उनके समक्ष लायी गई विशेष अनुमति याचिका पर सुनवाई का प्रावधान है पर प्रतिबंध नहीं लगाता है। भले ही इसे लाने वाला व्यक्ति जीवित न हो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह सच है। संहिता की धारा 431 केवल यह कहती हैं कि अपील अन्तर्गत धारा 411ए, उपधारा (2) और धारा 417 अंततः अध्याय XXXI के तहत जुर्माने की सजा से अपील को छोड़कर हर अन्य अपील अंततः अपीलार्थी की मृत्यु पर समाप्त हो जाएगी। इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा दायर की जाने वाली अनुमति प्राप्त अपील पर लागू नहीं होता है। श्री चौधरी का तर्क है कि इस न्यायालय को अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त शक्ति व्यापक और विवेकाधीन है जो कि उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 439 जिसे धारा 435 के साथ पढा जाना चाहिए की शक्तियां प्रदान की गई है के अनुरूप है।

इसलिए, प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और एक अन्य में इस न्यायालय के निर्णय के एक सादृश्य पर इस न्यायालय के पास अपील पर सुनवाई करने और याचिका कर्ताओं को मुकदमा चलाने की अनुमति देने की शक्ति है। वह यह तर्क नहीं है कि अपीलकर्ताओं को मृतक अपीलार्थी के स्थान पर अभिलेख पर लाए जाने का अधिकार है, लेकिन यह भी कहा कि न्याय के उद्देश्यों को पुरा करने के लिए आवेदकों को मुकदमा चलाने की अनुमति देना सही आँर उचित होगा, क्योंकि यदि यह सफल होता है तो वे सरकार से उनके दिवंगत पिता का देय वेतन के संबंध में बकाया का दावा करने में सक्षम होंगे।

मुझे ऐसा लगता है कि जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है, उसका विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय में की गई अपील पर कोई असर नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय आँर कुछ अन्य न्यायालयों को संहिता की धारा 435 द्वारा प्रदत्त शक्तियां आँर संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा इस न्यायालय को प्रदत्त शक्तियां विवेकाधीन है। जहां तक उच्च न्यायालय आँर कुछ अन्य न्यायालयों का संबंध है, विवेकाधिकार यह है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर स्थित किसी निचली आपराधिक अदालत के समक्ष किसी भी कार्यवाही के किसी भी रिकॉर्ड को मंगाए आँर निचली अदालत द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश की शुद्धता वैधता या

आैचित्य सजा आैर एेसी अदालत की किसी भी कार्यवाही की नियमितता की जांच करे। धारा 435 के तहत इन अदालतों को स्वतः संज्ञान लेकर इस प्रकार कार्य करने की शक्ति है। एक अपवाद को छोड़कर धारा 440 में प्रावधान है कि किसी भी पक्ष को व्यक्तिगत या वकील के द्वारा न्यायालय के समक्ष सुने जाने का अधिकार नहीं है। वह अपवाद यह है कि उच्च न्यायालय धारा 439 के तहत आदेश नहीं दे सकता जो कि आरोपी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है जब तक कि उसे अपने बचाव में व्यक्तिगत रूप से या वकील द्वारा सुनवाई का अवसर नहीं दिया जाता है। जब रिकॉर्ड उच्च न्यायालय के समक्ष आता है तो वह अपने विवेक से अपील न्यायालय को धारा 423, 426, 427 और 428 या किसी न्यायालय को धारा 338 में प्रदत्त शक्तियाँ का प्रयोग कर सकता है जो कि सजा को बढ़ाने की शक्ति भी रखता है। संविधान का अनुच्छेद 136 इस न्यायालय को विशेष अवकाश देने के लिए विवेकाधिकार प्रदान करता है कि विशेष याचिका की अनुमति दी जाये या नहीं। लेकिन यह अनुच्छेद किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के अभिलेख की जांच करने और उसे उपयुक्त बनाने के उद्देश्य से स्वतः संज्ञान लेने के लिए इस न्यायालय को शक्ति प्रदान नहीं करता है। यह केवल इस न्यायालय को यह अधिकार देता है कि वह किसी व्यक्ति को उसके समक्ष अपनी अपील लाने की अनुमति दे सके और उसे ऐसी त्रुटि दिखाने का अवसर प्रदान करना जो निर्णय में मौजूद हो या आदेश से अपील की गई। एेसी शक्ति

के बीच एक बुनियादी अंतर है जिसका प्रयोग न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान से किया जा सकता है और ऐसी शक्ति जिसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब किसी पक्षकार द्वारा उसके एवज में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। स्वतः संज्ञान शक्ति के प्रयोग के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष किसी पक्ष की उपस्थिति कोई पूर्व आवश्यकता नहीं है। वास्तव में धारा 440 में प्रावधान है कि यह न्यायालय को तय करना है कि पक्ष को उसके समक्ष उपस्थित होने और सुनवाई की अनुमति दी जाए या नहीं, लेकिन निश्चित रूप से प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत किसी अदालत को ऐसे मामले में भी पक्ष को सुनवाई का अवसर दिए बिना किसी पक्ष के पूर्वाग्रह के लिए आदेश देने से रोक देगा। जहाँ तक अपील का संबंध है, चाहे वह संविधान के किसी प्रावधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के रूप में हो या किसी अन्य कानून या विशेष अनुमति द्वारा उपबंध हो, अपीलार्थी को सुनवाई का अधिकार है और अपील को अभियोजित करने का अधिकार है। स्वतः संज्ञानात्मक शक्तियों का प्रयोग करने वाला न्यायालय किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रद्द करने का विकल्प चुन सकता है और अभिलेखों की जांच करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता है, लेकिन जब तक एक अदालत के समक्ष एक अपील लंबित है और एक व्यक्ति कानूनी रूप से सक्षम है और उसकी सुनवाई में कोई कानूनी बाधा नहीं है, अदालत के पास अपील को आगे बढ़ाने से इनकार करने का कोई विवेकाधिकार नहीं है, भले ही शुरू में इसे उसकी अनुमति से उसके सामने लाया गया हो। जैसे ही अनुमति दी

जाती है, उस पक्ष के पक्ष में एक अधिकार अर्जित होता है जिसे अनुमति दी गई है। यह हो सकता है कि जहां इस न्यायालय को लगता है कि अनुमति अनुचित तरीके से प्राप्त की गई है या दी गई है। वह अनुमति को वापस ले सकता है, लेकिन यह कहने से बिल्कुल अलग है की बिना अनुमति को वापस लिए वह अपील को रद्द भी कर सकता है। पुनरीक्षण संबंधी शक्तियों और अपीलीय शक्तियों के बीच यह अंतर पृष्ठ 70 पर दिये गये निर्णय में उल्लेख किया गया है। जैसा कि सिन्हा, जे. (जैसा कि वे उस समय थे) ने कहा है:

संहिता की धारा 439 जो कि धारा 435 के साथ है, द्वारा " उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियाँ इसमें निहित हैं जो कि वादी में एेसे कोई अधिकार उत्पन्न नहीं करता लेकिन न्याय सुनिश्चित करने के लिए केवल उच्च न्यायालय की शक्तियों को सुरक्षित रखे यह देखने के लिए कि न्याय न्यायशास्त्र के नियमों के अनुसार किया जाता है आैर अधिनस्थ आपराधिक अदालतें अपने अधिकार क्षेत्र से आगे नहीं बढ़ती है या संहिता द्वारा उनमें निहित शक्तियों का दुरुपयोग तो नहीं करती हैं। दूसरी आेर जैसा कि पहले ही संकेत दिया गया है, अपील का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है जिसे कि अदालत द्वारा मान्यता दी गई है आैर अपील का अधिकार जहां यह मौजूद है यहां तक कि उच्च न्यायालय भी अपनी विवेकाधिकार शक्तियों के प्रयोग से इन्कार नहीं कर सकता।

इस प्रकार जब इस न्यायालय द्वारा दी गई विशेष अनुमति रद्द नहीं की गई है तो वह अपने समक्ष अपील के संबंध में अपीलीय शक्तियों का प्रयोग कर सकता है इसलिए उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ अपील की सुनवाई करते समय यह न्यायालय केवल उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने में सक्षम होगा जैसा कि उच्च न्यायालय स्वयं अपील के संबंध में प्रयोग कर सकता है। जहां तक विशेष अनुमति द्वारा अपराधिक अपील की सुनवाई की प्रक्रिया का संबंध है इस न्यायालय ने कुछ नियम बनाये हैं। सुप्रीम कोर्ट नियम 1950 के आदेश XXI में वे नियम शामिल हैं। उस आदेश का नियम 23 अपील में पक्षकारों द्वारा उपस्थिति दर्ज करने का प्रावधान करता है। नियम 24 पक्षों द्वारा मामले के बयान दाखिल करने का प्रावधान करता है। नियम 25 में अपील को सुनवाई के लिए निर्धारित करने का प्रावधान है। नियम 26 न्यायालय को एक उचित मामले में सरकार की किमत पर एक वकील की नियुक्ति का निर्देश देने का अधिकार देता है। जहां आरोपी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी पसंद के रिकार्ड पर एक वकील द्वारा नहीं किया जाता है। नियम 27 में अपील की सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि पर आरोपी के उपस्थित ना होने पर उसे नोटिस देने का प्रावधान है और यदि आरोपी व्यक्ति चाहे तो वह लिखित रूप में अपना तर्क प्रस्तुत करके अपना मामला प्रस्तुत कर सकता है और सुनवाई में लिखित तर्क पर विचार करने की अनुमति देता है। उपनियम 2 अपील के दौरान हिरासत में आरोपी व्यक्ति को पेश करने की आवश्यकता

से छुट देता है। एेसा कोई स्पष्ट नियम नहीं है जो यह बताता हो कि क्या किया जाना चाहिए जहां आरोपी व्यक्ति जो अपीलार्थी है व अपील की सुनवाई में उपस्थित या प्रतिनिधित्व नहीं करता है। हालांकि आदेश XLV नियम 5 एेसे आदेश देने के लिए न्यायालय के अन्तर्निहित शक्ति को संरक्षित करता है जो न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने या न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं। इस प्रकार इस न्यायालय के पास अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है आैर यह दुरुपयोग होगा यदि अपीलकर्ता सुनवाई की तारीख की सूचना हाे जाने के बावजूद इस प्रक्रिया में सुनवाई में अनुपस्थित रहने का विकल्प चुनता है। अब न्यायालय आदेश XXI नियम 18 के तहत जहां अपीलार्थी अनुपस्थित है जहां अपीलकर्ता अपील को सुनवाई में लाने के लिए आवश्यक कदम उठाने से इन्कार कर देता है, अपील को खारिज कर देता है। इसे खारिज करने की समान शक्ति मानी जानी चाहिए जहां अपीलकर्ता मौजूद नहीं है या प्रतिनिधित्व नहीं करता। जहां अपीलकर्ता की अनुपस्थिति इस तथ्य के कारण है कि वह मर चुका है यह अभी भी गैर अभियोजन का मामला होगा इसलिए इस न्यायालय के पास अपील को खारिज करने का अधिकार आैर कर्तव्य होगा। अपील को चलाने की शक्ति अपीलार्थी को विरासत में मिली अपील पर मुकदमा चलाने के लिए इसका प्रयोग करने का दावा नहीं कर सकता है जब तक कि कानून उस अन्य व्यक्ति को एेसा अधिकार प्रदान नहीं करता है। यह कानून स्पष्ट रूप से

कर सकता है जैसा कि उसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI में किया है या निहित रूप से उसमें संहिता की धारा 431 में किया है। इस तथ्य के अलावा कि एक आपराधिक मामले में मामला आरोपी व्यक्ति और राज्य के बीच व्यक्तिगत है। तथ्य यह है कि अपील का अधिकार भी अपील कर्ता के लिए व्यक्तिगत है। इसे किसी अन्य द्वारा प्रयोग करने की अनुमति तब तक नहीं दी जा सकती जब तक की कानून में ऐसा कोई प्रावधान ना हो जो इसे प्रयोग करने की अनुमति दे या जब तक की किसी सिद्धान्त के संदर्भ में इस प्रकार के पाठ्य क्रम की अनुमति ना हो। माना जाता है कि विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय द्वारा लायी गई आपराधिक अपील में मृत अपीलकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन की अनुमति देने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। हालांकि हमें संहिता की धारा 431 में अधिनियमित कानून की निति को ध्यान में रखना होगा। निति यह है कि जुर्माने की सजा की अपील को छोड़कर अध्याय XXXI के तहत प्रत्येक आपराधिक अपील समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार किसी ऐसे सिद्धान्त के बजाय जिसके आधार पर किसी व्यक्ति के कानूनी उत्तराधिकारियों को उसकी मृत्यु के बाद मुकदमा चलाने की अनुमति दी जा सकती है। उसके द्वारा अपनी दोषसिद्धि व कारावास की सजा को चुनौती दी जाने वाली अपील पर कानून की निति निश्चित रूप से विरोधी होती है। इसके अलावा केवल वही व्यक्ति जो मृत अपीलकर्ता का उचित प्रतिनिधित्व का सकता है उसे उसके स्थान पर रिकार्ड पर लाने और अपील पर

मुकदमा चलाने की अनुमति दी जा सकती है। यही वो सिद्धान्त है जिस पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXII के प्रावधान आधारित है। अपील की अनुमति देने में इंग्लेण्ड में न्यायालयों द्वारा फिर से इसी सिद्धान्त का पालन किया गया जिसमें मृत अपीलकर्ता के निष्पादकों और प्रशासकों द्वारा अपील कर्ता पर लगाये गये जुर्माने को जारी रखने की चुनौती थी। इसके उदाहरण के रूप में सबसे पहले हाॅजसन बनाम लेकमैन का उल्लेख होगा। उस मामले में विस्काउंट केल्डकोट सीजे ने मृत अपीलकर्ता के निष्पादकों को अपील पर मुकदमा चलाने के लिए उसकी दोषसिद्धि और जुर्माने की सजा के खिलाफ अपील में हित का दावा करने की अनुमति दी थी। जुर्माना हालांकि सम्पत्ति पर एक छोटा सा बोझ होता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि निष्पादकों को उस बोझ को हटाने में रूचि थी। यह मामला रेजिना बनाम रोवे में प्रतिष्ठित था। उस मामले में मृत अपीलकर्ता की विधवा ने उस अपील पर मुकदमा चलाने के लिए अनुमति मांगी थी जिसमें उसने झुठे बहाने से धन प्राप्त करने के चार मामलों में अपनी दोषसिद्धि और 18 महिने की कारावास की सजा को चुनौती दी थी। जिस आधार पर विधवा के आवेदन का समर्थन किया गया था वह यह था कि उसके पति के खिलाफ दोषसिद्धि में उसके रोजगार की सम्भावनाओं और उसके दोस्तों के बीच उसकी स्थिति को प्रभावित किया था और रूचि परीक्षण है तो विधवा की रूचि थी इस तर्क को लॉर्ड गोडार्ड सीजे ने खारिज कर दिया था। जिन्होंने कहा था कि अदालत इस पर ध्यान नहीं दे

सकती, क्योंकि वह जो रुचि रखती थी वह आर्थिक मामला नहीं था। न्यायालय के समक्ष यह भी आग्रह किया गया कि जहां किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ दोषसिद्धि से कोई व्यक्ति पूर्वाग्रह ग्रस्त हो सकता है और उस व्यक्ति की मृत्यु से पहले अपील दायर की गई थी, अदालत को उस व्यक्ति द्वारा अपील जारी रखने की अनुमति देनी चाहिए। यदि न्याय की हत्या हो गई थी और मृतक के उत्तराधिकारी उस तथ्य के भ्रम में रहे थे कि उनके रिश्तेदार की मृत्यु एक दोषी के रूप में हुई थी, न्याय के हित में अपील की सुनवाई की आवश्यकता होगी। इस तर्क पर विद्वान मुख्य न्यायाधीश का उत्तर था कि यह निशुल्क क्षमा के लिए आवेदन का मामला होगा। फैसले के दौरान उन्होंने कहा कि-

"..... हम किसी विधवा या निष्पादक या प्रशासक को इस न्यायालय में अनुमति नहीं दे सकते, जब तक कि वे कानूनी रुचि नहीं दिखा सकते। यदि किसी व्यक्ति को जुर्माना देने की सजा सुनाई जाती है और अपील करने के तुरन्त बाद उसकी मौत हो जाती है या भले ही वह भुगतान के बाद मर जाता है तो ऐसा हो सकता है कि अदालत निष्पादकों या प्रशासकों को केवल इस आधार पर अपील की अनुमति देगी कि यदि दोषसिद्धि रद्द कर दी जाती है तो वे मृतक की सम्पत्ति के लाभ के लिए जुर्माना वसूल सकते हैं जिसका प्रबन्धन करने के लिए वे बाध्य हैं। हाेजसन वी. लेकमैन (1) जिस पर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था,

जो डिविजनल कोर्ट के सामने एक मामला था, लेकिन सिद्धान्त वही होगा, अपीलकर्ता मर चुका था और अदालत ने निष्पादकों को अपील जारी रखने की अनुमति दी थी, क्योंकि वह एक आर्थिक रूचि का मामला था जैसा कि कभी कभी होता है कि एक व्यक्ति को अभियोग में दोषी ठहराया जाता है और 500 पाउण्ड का जुर्माना लगाया जाता है उन पैसों का भुगतान करना होगा और क्राउन उस पैसे को वापस ले सकता है चाहे वह मृत हो या जीवित, क्योंकि यह उसके सम्पत्ति के खिलाफ वसूल कर सकता है और इसलिए यदि निष्पादकों को अपील करने और यह कहने की अनुमति कि यह सजा गलत है, नहीं दी गई तो यह अन्याय होगा, दोषी ठहराना गलत होगा, क्योंकि यदि वह गलत होता तो पैसा बच जाता।

हो सकता है कि यह कहना कृत्रिम हो कि यदि आर्थिक दंड है ताे अपील हो सकती है, जबकि शारीरिक दंड या कारावास लागू है, वहां अपील नहीं हो सकती, लेकिन साथ ही एेसा कोई आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर हम वर्तमान मामले में कह सके कि किसी को भी रूचि है। एेसा हो सकता है कि विधवा को पति के नाम से दोषसिद्धि हट जाने पर बहुत खुशी होगी, लेकिन हम उस भावनात्मक रूचि का ध्यान नहीं रख सकते। कोर्ट के फैसले से अब कोई प्रभावित नहीं हुआ है, क्योंकि निर्णय आजीवन कारावास का था और कैदी मर चुका था। यह बहुत ही नया

कदम होगा कि यदि इन परिस्थितियों में हम कहें कि अदालत एक अपील पर विचार करेगी।

शार्ट एण्ड मेलर्स (द प्रैक्टिस आँन द क्राउन साईड आँफ द जे. किंग्स बेंच डिवीजन, दूसरा संस्करण) में यह पेज नम्बर 425 पर यह कहा गया है कि प्रथा एक समान प्रतीत नहीं होती है आँर कुछ मामलों का संदर्भ दिया गया है। उनमें से एक हैस्कीथ बनाम असथरटन में वकील को एक पक्ष की मृत्यु होने के बाद अपील पर बहस करने की अनुमति दी गई थी, लेकिन लीच बनाम वानस्टेड स्कूल बोर्ड में, जिसमें बच्चे को स्कूल न भेजने के लिए बच्चे के पिता के खिलाफ दोषसिद्धि हो गई थी, अदालत ने मामले पर बहस करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। इस आधार पर कि कोई हित जीवित नहीं था। साइबेरिया बनाम कोनोली में जहां नाविक के वेतन के लिए दावा किया गया था, अपीलकर्ता के निष्पादकों को मृत अपीलकर्ता की जगह लेने की अनुमति दी गई थी। काँन्स्टेटाइन बनाम इलिंगवर्थ में जहां एक अापराधिक मामले में प्रतिवादी की मृत्यु हो गई थी, अदालत ने मामले को खत्म करने का आदेश दिया। जोन्स बनाम फाँलोफील्ड में भी एेसा ही किया गया था। रिवर बनाम ग्लासे में जहां प्रतिवादी की मृत्यु हो गई थी आँर अपीलकर्ता ने सजा का समर्थन करने के लिए निष्पादकों को नोटिस दिया था, अदालत ने मामले को सुना आँर निर्धारित किया और प्रतिवादी के निष्पादकों को लागत दी। अब तक की

स्थिति जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका का संबंध है इस प्रकार बताया गया है-

किसी अभियुक्त की मृत्यु आम तौर पर उस समय लंबित पुनरावलोकन कार्यवाही सहित आपराधिक कार्यवाही को समाप्त कर देती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम मूक में मृतक के प्रतिनिधियों या निकटतम रिश्तेदारों की उसके नाम की छवि को साफ करने में रूचि को अपीलीय अदालत में अनुमति देने के लिए पर्याप्त नहीं माना गया, प्रतिवादी की मृत्यु के बाद उल्लंघन की सजा से उसकी अपील लंबित थी अंतरराज्यीय वाणिज्य अधिनियम अपील को गुण-दोष के आधार पर तय करने के लिए है। हालांकि, अदालत ने कहा " हमें लगता है कि यह कहना गलत नहीं होगा कि ऐसा लगा है कि यह एक दोषी व्यक्ति का निकटतम रिश्तेदार है जो व्यक्ति अपील लंबित रहते हुए मर जाता है। उनके अच्छे नाम की छवि को साफ करने में रूचि है जिस पर कांग्रेस अच्छी तरह से विश्वास कर सकती है कि यह कानून में बदलाव को उचित ठहराएगा।

इस प्रकार उस क्षेत्राधिकार में भी हस्तक्षेप के आधार पर जब अनुमति दी जावे, जब मृतक के उत्तराधिकारियों या निष्पादकों में हित का अस्तित्व हो। अब हित केवल आर्थिक होगा और जहां से सम्पत्ति प्रभावित नहीं होती है वहां उत्तराधिकारी या निष्पादक के हस्तक्षेप की अनुमति देने का कोई आधार नहीं होगा। ये हो सकता है कि मृत दोषी के

उत्तराधिकारियों को अपना नाम हटाने की रूचि को मान्यता दी जानी चाहिए और उन्हें इसे करने का अवसर भी दिया जाना चाहिए, लेकिन जब तक इसे विधायिका द्वारा मान्यता नहीं दी जाती तब तक न्यायालय इस पर संज्ञान नहीं ले सकता। जहां तक अदालत का सवाल है हमारे सामने अपील में एक मात्र सवाल यह है कि क्या दोषसिद्धि और कारावास की सजा कानून में सही है। एक मात्र व्यक्ति जिसकी न्यायालय के समक्ष अपील में यह दिखाने में रूचि थी कि दोनों उचित नहीं थे वह अपील कर्ता था। चूंकि वह मर चुका था इसलिए जो रूचि थी वह समाप्त हो गई थी और किसी को भी हस्तान्तरित नहीं की जा सकती है।

एक अन्य मामला जिसे बाद में संदर्भित किया गया था वह केरल राज्य बनाम नारायणी अम्बा कमला देवी(1) था, जिसमें प्रणब कुमार मित्रा(2) के मामले में निर्णय पर भरोसा किया गया था और इन्परेट्रीक्स बनाम डाेंगा जी अण्डा जी (3) का संदर्भ दिया गया था उस मामले में भी सवाल यह था कि क्या उच्च न्यायालय किसी आरोपी व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी उसके खिलाफ अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। वहां न्यायालय को विशेष अनुमति द्वारा उसके समक्ष लाई गई आपराधिक अपील के संबंध में अपनी शक्तियों के बारे में कोई चिंता नहीं थी। फिर यह कहा जाता है कि आवेदकों की रूचि इतनी है कि मृत अपीलकर्ता की सम्पति 40000/- रुपये से समृद्ध हो जायेगी। यदि यह

न्यायालय अंततः अपीलकर्ता को निर्दोष पाता है और यदि सरकार इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर कार्य करती है जो उस पर बाध्यकारी है अपीलकर्ता के खिलाफ पारित निलम्बन आदेश को रद्द कर देती है और इसके अनुरूप बकाया का भुगतान करती है। अपीलकर्ता को देय वेतन यह हित इस अर्थ में प्रत्यक्ष नहीं है कि यह इस न्यायालय के निर्णय से उत्पन्न नहीं हो सकता, भले ही वह अपीलकर्ता के पक्ष में हो। आवेदकों का एकमात्र हित आकस्मिक है और ऐसा नहीं है जो इस न्यायालय के अन्तिम निर्णय से सीधे प्रवाहित हो सके। यदि हम उल्लेख कर सकते हैं तो रोवे के मामले में लार्ड गोडाड सीजे के समक्ष पेश किया गया तर्क कि अपने मृत पति के नाम को दण्डादेश से हटाने से विधवा की रोजगार हासिल करने की सम्भावना में सुधार होगा, जैसे कि उसे अनुमति देने का आश्चित्य साबित करने पर अपील पर मुकदमा चलाना, उसे आर्थिक हित पैदा करने के रूप में स्वीकार नहीं किया गया था।

वास्तव में विधायिका ने संहिता की धारा 431 में सिमित करके यह कहा कि जुर्माने की सजा के खिलाफ अपील के अस्तित्व को केवल एक प्रकार के हित को मान्यता देने के लिए चुना गया है और किसी को नहीं। कई अन्य प्रकार की रुचि भी हो सकती है जैसा कि बार में बहस के दौरान सुझाया गया था, लेकिन यह न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों या विवेकाधीन शक्तियों का सही कानूनी सिद्धान्तों के अनुसार प्रयोग करते हुए

एक प्रकार के हित को पहचानने में कार्य नहीं कर रही है जिसे मान्यता देने के लिए विधायिका ने नहीं चुना है। इसलिए इन परिस्थितियों में मैं स्पष्ट हूँ कि आवेदकों को अपील पर मुकदमा चलाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

अपील पर मुकदमा चलाने की अनुमति देने से इंकार किया गया।

स्वाति पारीक (RJ00901)

प्रिंसिपल मजिस्ट्रेट,

किशोर न्याय बोर्ड झुंझुनू

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी स्वाति पारीक (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।